खरगोश

–प्रियवंद

हमारे घर बिल्कुल सटे हुए थे। किसी पुरानी हवेली को जबर्दस्ती बाँटकर बनाए गए दो हिस्से। छत...छज्जे...आँगन...फटी दरारों वाली दीवारें...उखड़े फर्श और ऊँची-ऊँची छतों और हवादार खिड़कियों वाले विशाल पुराने कमरे। दोनों हिस्सों को बाँटने वाले आँगन के बीच में एक दीवार और उस दीवार में एक छोटा-सा दरवाजा था, जिससे एक-दूसरे के घरों में जाया जा सकता था। एक घर में मैं था और दूसरे में अविनीश भाई।

उस समय मेरी उम्र ऐसी थी जिसमें हर बालक का एक महानायक होता है। दुर्धर्ष...अदम्य...अपराजेय...दिव्य। अविनीश भाई मेरे नायक हुआ करते थे। साफ सफेद रंग...विद्वान...संतुलित...स्थितप्रज्ञ युवक का आभास देते थे वह। मेरी दृष्टि में संसार का कोई पराक्रम नहीं था जो अविनीश भाई न कर सके। मेरे लिए वह किसी भी देवता से सुन्दर थे। जैसी कि वह अवस्था होती हे, मैं उन पर मोहित था। चुपचाप बैठकर उनको देखने में भी एक सुख मिलता था। उनकी भंगिमाएँ, उनकी मुद्राएँ...बातचीत में काँपते होंठ...हाथों की उँगलियाँ...विचारवान आँखें। अविनीश भाई मेरी अंतिम शरण थे। उनकी बात मेरे लिए सृष्टि का अन्तिम सत्य थी। पतंग के कन्ने बाँधने से लेकर पिशाच साधने तक मैं हर गुत्थी के लिए अविनीश भाई के पास दौड़ता था।

हमारे घरों में बीच का वह छोटा दरवाजा हर समय खुला रहता था। सुबह या शाम या रात, किसी भी समय में आँगन पार कर उसी दरवाजे से होता हुआ ऊपर अविनीश भाई के कमरे में घुस जाता था। अविनीश भाई भी दुलार करते थे मेरा। बिस्तर में दुबकाकर चिपका लेते थे और दुनिया भर की बातें बताते थे। उनका कमरा किताबों से

भरा रहता था। अविनीश भाई मेरे खाने के लिए हमेशा कुछ रखते। मीठी गोलियाँ...काजू या किशमिश। जेब से कुछ न कुछ निकालकर मुझे दे देते।

मैं अपने घर में कम अविनीश भाई के साथ ज्यादा लटका रहता था। ''अविनीश भाई,'' मैं शाम को चार बजे तपती धूप में उनके कमरे में पहुँच जाता। वह कुछ पढ़ रहे होते।

'आओ बन्टू' वह मुस्कराकर मुझे चिपका लेते और फिर पढ़ने लगते। मैं किताब छीन लेता।

''पढ़ना बन्द अविनीश भाई,''

''क्यों?''

''पास की नीली छत वाले ने कल मेरी तीन पतेंगें काट दीं।''

''तो?''

''आज उससे हिसाब बराबर करना है...तुम चलो।''

''कहाँ?'' अविनीश भाई पूछते।

''छत पर...पहले उसकी तीन पतंगें काटो चलकर।''

''पर जरूरी नहीं है कि काट ही दूँ...कट भी सकता हूँ।''

''नहीं'' मैं अंधविश्वास से उनको देखता ''तुम्हें कोई नहीं काट सकता, चलो।'' मैं उनको खींचता।

''पर शाम तो होने दो।''

शाम को मैं छत पर अविनीश भाई को ले जाता। सीना फुलाए...श्रेष्ठता के विजयी भाव से भरा। मैं चरखी दिखाती...अविनीश भाई पतंग बढ़ाते। नीली छत वाला भी उड़ाता। अविनीश भाई एक के बाद एक उसकी पाँच पतंगें काटते। मैं उत्तेजना...उत्साह और आनंद से हर बार चीखता...तालियाँ पीटता। मेरी आत्मा में अविनीश भाई की शक्ति उतर आती, इसलिए कि जो सामर्थ्य...जो श्रेष्ठता अविनीश भाई के पास है वह सब मेरी है...क्योंकि अविनीश भाई मेरे हैं।

अकसर शाम को अविनीश भाई ऊपर छज्जे से मुझे आवाज देते। उनकी आवाज सुनते ही मैं सब छोड़कर दौड़ पड़ता। ''चल घूम आयें'' वह नीचे आकर मेरा हाथ पकड़ लेते, ''माँ से कह दे।'' मैं आँगन से ही चीखकर माँ को बता देता। माँ मेरे पीछे

बकती...झकती...माथा पीटती...मेरे घूमने को कोसती, पर मैं कूदता हुआ अविनीश भाई के साथ निकल जाता। हम बहुत देर तक घूमते रहते। डूबते सूरज की लाली में...ठंडी काँपती रातों में...कभी बारिश में भी। बाजारों में...गंगा किनारे...नाव पर...कभी पुराने किले में...कब्रिस्तान में और कभी किसी पेड़ के नीचे। अविनीश भाई मुझे कितना कुछ बताते रहते। ''इंसान का दिल उसकी पूरी जिंदगी में दो हजार करोड़ बार धड़कता है...कि मादा मच्छर बस तीन दिन जिंदा रहती है और इन तीन दिनों में पैदा लाखों मच्छर पैदा करके मर जाती है...कि हाथी के पैर में कोई हड्डी ही नहीं होती...कि केवल जिराफ ऐसा जानवर है जो तैर नहीं सकता...कि चाँद से जमीन को केवल चीन की दीवार दिखती है...कि दुनियाँ के किसी भी राडार या कंप्यूटर से तेज दिमाग चमगादड़ का होता है जो अंधेरी छोटी गुफाओं में तेज रफ्तार से उड़ता रहता है, पर कभी किसी दीवार से नहीं टकराता।'' मैं हैरानी से मन्त्रमुग्ध-सा सुनता रहता। कहाँ सीमा है अविनीश भाई की...कितना जानते हैं...। क्या कोई उनसे भी श्रेष्ठ हो सकता है?

वे जाती हुई सर्दियों के दिन थे। दिन भर तेज हवाएँ चलतीं और पेड़ों के सूखे पत्ते टूटकर गिरते रहते। पाँवों के नीचे चटकते...चीखते...। दिन खाली-खाली, लंबे और उबाऊ होने लगे थे। मैं सुबह से ही शाम होने का इंतजार करने लगता, क्योंकि सर्दियों के बाद के साफ खुले आसमान पर पतंगें उड़ना शुरू हो गई थी।

उन्हीं दिनों एक शाम को अविनीश भाई मुझे ऊपर से आवाज दी।

''बन्टू।''

मैं बाहर आँगन में आ गया। छज्जे पर अविनीश भाई थे।

''क्या कर रहे हो?''

''पतंग जोड़ रहा हूँ।''

''चल...बाहर चलें।''

मैंने सर हिलाया। नीचे आकर अविनीश भाई ने मेरा हाथ पकड़ा और गली के अन्दर बाहर ले आए।

हमारी गली के बाहर सड़क की दुकानों के आगे कई चबूतरे बने थे। कई तरह के कई आकार के। रात को उन चबूतरों पर मुहल्ले के हलवाइयों की दुकान पर काम करने वाले छोटे लड़के...या भिखारी सोते थे। दिन भर चलते-फिरते लोग कुछ देर बैठकर दम लेते...पानी सिगरेट पीते या मुहल्ले के बेकार लड़के शतरंज खेलते...ताश पीटते या सस्ती किताबें पढ़ते। वहीं एक चबूतरे पर अविनीश भाई बैठ गए। मैं भी उनके साथ

चिपक गया। अविनीश भाई कुछ बोल नहीं रहे थे, चुपचाप सामने देख रहे थे। कितनी देर यूँ ही देखते रहे। कभी-कभी गर्दन घुमाकर दाएँ देख लेते।

मैं ऊबता-सा कभी सामने सड़क पर गुजरती भीड़...कभी धूप की बढ़ती छाया और कभी ऊपर आकाश की पतंगें देख रहा था। अचानक अविनीश भाई उठ गए।

''चल...पतंग उड़ाएँ।''

''पर अब तो सब उतार रहे हैं।'' मैंने बुरा-सा मुँह बनाया।

''अभी अँधेरा होने में देर है...चल।''

''पर क्यों...हम अभी कहीं घूमने भी नहीं गए?''

''फिर कभी।'' अविनीश भाई ने मुझे पकड़ा और लगभग घसीटते हुए घर ले आए।

पतंग...माँझा...चरखी लेकर मैं उनके साथ छत पर पहुँच गया। छत की एक ऊँची मुंडेर पर अविनीश भाई बैठ गए।

''तुम बढ़ाओ...मैं देख रहा हूँ।''

मैंने पंतग बढ़ानी शुरू की और बढ़ाता गया। बीच-बीच में अविनीश भाई को देख लेता। वह मेरी तरफ पीठ किए बैठे थे...सामने मकानों को देखते हुए। थोड़ी देर बाद ही अँधेरा घिरने लगा। चीखते हुए तोते पेड़ों को वापस लौट रहे थे।

''एक तोता फँसाऊँ?'' मैंने चिल्लाकर पूछा।

''नहीं...चलो...'' अविनीश भाई अब उठे, ''लाओ, मैं चरखी कर लूँ।'' मैंने पूरी पतंग खींची...अविनीश भाई ने चरखी की। लगभग होते हुए अँधेरे में हम नीचे आ गए।

यही दूसरे दिन भी हुआ...तीसरे दिन भी फिर हम शाम होने लगा। मैं ऊब गया इससे।

''यहाँ क्यों बैठते हो अविनीश भाई?'' एक दिन मैंने पूछ लिया।

''बताऊँ।'' अविनीश भाई ने मुझे देखा।

''हाँ।''

''अपनी मृत्यु देखता हूँ।''

''मृत्यु?'' मेरी आँखें फैल गई।

''हाँ।'' अविनीश भाई मुस्कराए।

''क्या मृत्यु दिख सकती है?''

''हाँ?''

''सच बताओ।'' मैं डरकर उनसे और सट गया।

''सच कह रहा हूँ।''

''मुझे भी दिखाओ।''

अविनीश भाई हँस दिए।

मैं चुपचाप सामने सड़क पर देखने लगा। कहाँ हो सकती है अविनीश भाई की मृत्यु? सामने ठेले वाले जल्दी-जल्दी फुटपाथ पर बिछा अपना सामान समेट रहे थे। मदारी झोले में रंगीन पत्थर, जड़ी-बूटियाँ भर रहा था। सांडे का तेल बेचने वाला टूटी रीढ़ वाले गिरगिटान, छिपकलियाँ, लिजलिजे निचुड़े छोटे-छोटे साँप, तेल की शीशियाँ, झोले में भर रहा था। सब्जियाँ...फलों के छिलके, हड़बड़ाते हुए दुकानदार उठा रहे थे। हलवाई की दुकान पर छोटा लड़का ऊँघता हुआ बर्तन माँज रहा था। दूसरा भट्ठी की राख साफ कर रहा था। एक साँड़ लँगड़ाता हुआ जा रहा था। एक बूढ़ा खंभे से चिपका घाव की मक्खियाँ उड़ा रहा था। कोने में एक जवान औरत दूसरी बूढ़ी औरत के सर की जूँ बीन रही थी। एक बच्चा चूहे की पूँछ को रस्सी से बाँधकर उछाल रहा था। सब जीवित था। मृत्यु कहाँ थी? कहाँ थी अविनीश भाई की मृत्यु?

''देख।'' अचानक अविनीश भाई ने मेरी बाँह दबाई। ''वह आ रही है।''

''कौन?''

''मृत्यु।''

मैंने दाई तरफ देखा जिधर अविनीश भाई इशारा कर रहे थे। सड़के के एक ओर सुंदर लड़की धीरे-धीरे हमारी तरफ आ रही थी। हाथों में दबी किताबें छाती से चिपकाए...गोरा रंग...खुले बाल...चमकदार फरफराते कपड़े...और कपड़ों के बीच पेट का थोड़ा-सा खुला हिस्सा। सफेद मुलायम...धीरे-धीरे हिलता, साँस लेता...एक छोटे खरगोश जैसा।

''कौन...यह लड़की?'' कुछ देर मैं उसे देखता रहा फिर धीरे से पूछा मैंने।

''हाँ।''

''यही तुम्हारी मृत्यु है?''

''हाँ।''

''कैसे?''

''उसे देखते ही मेरे प्राण निकल जाते हैं।'' अविनीश भाई धीरे-से हँसे।

''तो तुम रोज इसको देखने के लिए बैठते हो?'' मैंने हैरानी से पूछा।

''हाँ।''

''धत्।'' मैंने मुँह बनाया।

वह लड़की हमारी सामने से निकली। सर घुमाकर उसने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर पास की गली में चली गई।

''चलो...छत पर चलते हैं।'' अविनीश भाई चबूतरे से उतर गए।

''अब वहाँ क्या है?'' मैंने ऊबते हुए कहा-''वह तो गई।''

''गई नहीं...चलो।''

हम दौड़ते हुए छत पर आए। मैं अपने गुप्त स्थान से पतंग लेने के लिए लपका।

''नहीं...पतंग रहने दे अब।'' अविनीश भाई ने रोका, ''मेरे साथ बैठ जा और चुपचाप देख।'' अविनीश भाई ने उसी मुँडेर पर मुझे अपने साथ बैठा लिया।

सामने घरों के बीच एक छत पर कमरे के बाहर कुछ लड़कियाँ खड़ी थीं। उनमें वह भी थी। अलग सी, दीवार पर झुकी।

''अरे वही है यह तो...और हमें देख रही है।'' मैं चिल्लाया।

''हमें नहीं सिर्फ मुझे।'' अविनीश भाई मुस्कराए।

''उसे पता है?''

''क्या?''

''यही कि तुम उसे देखने के लिए रोज बैठते हो।''

''हाँ।''

''उसे पता है कि वह तुम्हारी मृत्यु है?''

''नहीं।''

''फिर?''

''फिर क्या?''

''कब तक ऐसे बैठोगे?''

अविनीश भाई कुछ नहीं बोले।

''छत पर क्या है?'' मैंने उँगली उधर दिखाई।

''नाच सिखाने का स्कूल है।''

मैं चुप हो गया। मैं उसे बिल्कुल साफ देख पा रहा था। तेज हवा में उड़ते उसके खुले बाल...गोरा रंग...। उसने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर अंदर चली गई।

''वह क्यों चली गई?'' मैंने पूछा।

''उसकी क्लास शुरू हो गई और हमारी क्लास खत्म'' अविनीश भाई ने मुझे ढकेला। मैं मुँडेर से कूदकर उतरा और अविनीश भाई के साथ लटक गया।

तोते फिर घरों को लौट रहे थे। आज पतंग नहीं थी इसलिए मैंने उन्हें फँसाने के लिए अविनीश भाई से नहीं पूछा।

अब शाम को अविनीश भाई के आवाज देने से पहले ही मैं तैयार रहता। कभी खुद ही उनके पास चला जाता।

''चलो अविनीशी भाई...मृत्यु आती होगी?''

अविनीश भाई खिलखिला पड़ते।

''यू टू...ब्रूटस।''

हम उसी तरह चबूतरे पर बैठते रहे।

''हम कब तक इस तरह बैठते रहेंगे?'' एक दिन मैंने पूछ लिया।

''क्यों?''

''कुछ होता ही नहीं। बस आओ...यहाँ बैठकर देखते रहो...फिर छत पर बैठो, देखते रहो। इस तरह देखने से क्या मिलता है तुम्हें? न पतंग उड़ाना न घूमना...।''

''तू भी तो देखता है।'' अविनीश भाई ने जेब से एक मीठी गोली निकालकर मुझे दी।

''वह तो तुम दिखाते हो इसलिए देखता हूँ...मुझे क्या।'' मैंने गोली मुँह में रख ली।

''तुझे अच्छी नहीं लगती।''

''लगती तो है।'' मैं झेंप गया। ''पर इससे क्या होता है।''

''इसी से होता है...इतनी सुंदर कोई लड़की देखी है तूने कभी?'' मैं चुप हो जाता। सच यही था कि उसके पेट का वह हिस्सा मुझे भी अच्छा लगता था। मन करता था...मुँह चिपका दूँ उसमें...या चबा लूँ।

''एक काम कर मेरा।'' अविनीश भाई ने जेब से एक कागज निकाला।

''आज वह आए तो जाकर उसे यह दे देना।''

''क्या है यह?''

''चिट्ठी।''

''नहीं।''

''क्यों?''

''मारेगी।''

''नहीं मारेगी।''

''तो तुम दे दो न।''

''मुझे मुहल्ले में सब देखेंगे...तुम बच्चे हो...कोई कुछ नहीं कहेगा।''

''पर उसने पकड़ लिया तो?''

''बस हाथ में देना और भाग जाना।''

''कहाँ?''

''घर।''

मैंने कागज मुट्ठी में दबा लिया।

''एक गोली और दो।''

अविनीश भाई ने जेब से एक गोली और निकालकर मुझे दी। मैंने उस गोली को भी मुँह में रखा और चुपचाप उसका इंतजार करने लगा। थोड़ी ही देर में वह आती दिखाई दी। उसी तरह...कंधों तक खुले बाल, फरफराते कपड़े।

''चल तैयार हो जा।'' अविनीश भाई ने मुझे चबूतरे से ढकेल दिया। कागज मुट्ठी में दबाकर मैं खड़ा हो गया। दौड़ शुरू होने के पहले वाली मुद्रा में। मेरी साँस तेज चलने लगी...बदन फूलने-पिचकने लगा। धीरे-धीरे वह मेरे सामने आ गई।

''दौड़।'' अविनीश भाई फुसफुसाए।

मैं दौड़ा और बिल्कुल उसके सामने जाकर खड़ा हो गया। वह अचकचा कर रुकी और मुझे देखने लगी। मैं पहली बार इतनी पास से उसे देख रहा था। लाल शर्बत में घुला, गुंथा हुआ आटा हो जैसे। खुले बालों के बीच चौड़ा माथा...आँखों में वही जो माँ की आँखों में होता है। हल्के सुनहरे रोओं वाला हाथ...बगल से आती कच्चे दूध की गंध के गुच्छे...और बिल्कुल पास उसके पेट का वह हिस्सा...बिल्कुल जिंदा..एक छोटा खरगोश...धीरे-धीरे काँपते हुआ...गर्म साँस छोड़ता। मैं बिल्कुल उसके पास था। मेरा चेहरा उस तक आ रहा था...इतना पास कि मैं उसे छू सकता था; उसकी गर्मी महसूस कर सकता था। मैं सम्मोहित-सा उसे देखता रहा...जैसे अभी दौड़ेगा वह खरगोश। इतना सुंदर भी कुछ हो सकता है?

''क्या है?'' वह थोड़ा झुकी और धीरे-से बोली...हल्की फुसफुसाहट-सी। चौंककर मैंने हाथ का कागज बढ़ा दिया।

''क्या है यह?'' उसने कागज ले लिया।

''पता नहीं।'' मैंने कहा और मुट्ठी भींचे पूरी ताकत से दौड़ता हुआ घर तक भागता चला आया। अविनीश भाई को पलटकर देखा भी नहीं।

कुछ ही देर में अविनीश भाई भी दौड़ते हुए आए।

''क्या हुआ?'' मैंने भय से पूछा, ''कुछ बोली?'' मैं अभी तक हाँफ रहा था। भय...उत्तेजना से। अविनीश भाई ने मुझे कसकर चिपका लिया।

''चल, छत पर चलकर देखें कि क्या हुआ?''

हम छत पर आ गए और उसी मुँडेर पर बैठ गए। सामने वह खड़ी थी...उसी तरह। हम उसे...वह हमें देखती रही।

धीरे-धीरे अँधेरा उतरने लगा। तोते रोज की तरह चीखते हुए पेड़ों को लौटने लगे...वह खड़ी रही। फिर अँधेरा गहरा हुआ...रात हुई...आस-पास सितारे निकले और चाँद चमकने लगा...वह खड़ी रही। फिर धीरे-धीरे हवा तेज होती गई...जाती हुई सर्दियों की पागल हवा में पेड़ चीखते हुए अपने पत्ते नोच-नोचकर फेंकने लगे...वह खड़ी रही। परिंदों ने पेड़ों में सर छुपा लिए...घरों के चिराग एक-एक करके बुझते गए...वह खड़ी रही। सूरज डूबा, सूरज उगा...फूल खिले...फूल मुरझाए...ऋतुएँ आईं, ऋतुएँ गईं...कई जन्म हुए कई मृत्यु...वह खड़ी रही।

सुबह मेरी आँख खुली तो मैं बिस्तर पर था। पता नहीं कब तक हम बैठे रहे...कब मैं छत पर सो गया...कब अविनीश भाई मुझे गोद में उठाकर बिस्तर पर डाल गए।

दूसरे दिन शाम को मैं फिर निश्चित समय पर तैयार हो गया। उत्सुकता और रोमांच से भरा। अविनीश भाई की आवाज नहीं आई। मैं ही ऊपर उनके कमरे में चला गया। अविनीश भाई पलंग पर लेटे थे।

''अरे...चलना नहीं क्या?'' मैं सिरहाने बैठ गया।

''कहाँ?''

''चबूतरे पर...मृत्यु के आने का समय हो रहा है।''

''अब उसकी जरूरत नहीं है बंटू...'' अविनीश भाई ने मेरी तरफ करवट बदली।

''क्यों?''

''वह नहीं आएगी...आज उससे दूसरी जगह मिलना है।'' अविनीश भाई ने मुझे थपथपाया। मैंने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर उठा और नीचे चला आया।

अब मेरे पास करने के लिए कुछ नहीं था। अचानक मैं एकदम खाली-खाली-सा हो गया। हवा से जमीन पर दौडते पत्ते की तरह। दिशाहीन...उद्देश्यहीन...ढकेला जाता हुआ।

धीरे-धीरे मैं अकेला ही गली के बाहर आकर चबूतरे पर बैठ गया। ऊँचे पेड़ की पत्तियाँ हवा में काँप रही थीं। एक कौआ उस पर बैठा चीख रहा था। सामने सड़क पर सब कुछ वैसा ही था। वही ठेले वाले...गाय...जूतों का ढेर लगाए मोची...कूड़े के ढेर...बहती नाली...सामान बेचते फुटपाथ पर लोग। सामने साँडे का तेल बेचने वाला बैठा था। चादर बिछाए, अजीब-अजीब जड़ी-बूटियाँ...सूखे निचुड़े हुए गिरगिटान...साँप...रेंगने वाला कोई और गिलगिला जानवर...किसी डिब्बे से साँप...और गले में पतली रस्सी बाँधे गिरगिटान। छड़ी से वह उन्हें छूता तो वे फुकारते...उछलते। तेल निकाले हुए निचुड़े सूखे को छूता तो वह वैसा ही पड़ा रहता। सामने ढेर में एक सफेद रंग का मोटा-तंदरुस्त साँप था। कुंडली मारे...बीच-बीच में जीभ निकालता। वह आदमी उसको छड़ी से छूता हुआ चीख रहा था, ''यह रेत का साँप है...बहुत भयानक...कभी काटता नहीं। चुपचाप मनुष्य की छाती पर बैठ जाता है और अपने जहर से आदमी की साँसें जहरीली करता रहता है। आदमी को पता भी नहीं चलता कि कब उसके अंदर पूरा जहर फैल गया और कब वह मर गया।'' मैं जुगुप्सा और भय से उसे बहुत देर देखता रहा।

धीरे-धीरे अँधेरा उतरने के साथ भीड़ छटने लगी। सड़क किनारे के लैंप पोस्ट जलने लगे। ठेले वालों ने सब्जियाँ समेटी और लौटने लगे। खाली होती सड़क, ऊपर

से गिरते पीले अँधेरे में गुँथे उजाले से ढक गई। अँधेरे के साथ तेज हवा चलने लगी। अब सामने कुछ भी नहीं था। खाली सड़क...अँधेरा और कहीं-कहीं काँपती परछाइयाँ। रिक्शे पर बैठी बिल्कुल नंगी एक पगली जा रही थी। तनी छातियाँ लिए...खिलखिलाती। रिक्शे वाला बदहवास रिक्शा दौड़ा रहा था...किसी अँधेरे कोने की और। साँडे वाले ने सब साँप गिरगिटान समेट लिए थे। मेरे ऊपर उदासी छाने लगी। धीरे-धीरे पंजों से रेंगती ऊपर चढ़ती। मैंने पाँव झटके...फिर धीरे-से उठा और थका-थका सा लुढकता हुआ घर आकर सो गया।

फिर मैं अकेला ही पतंग उड़ाने लगा। अविनीश भाई अकसर शाम को घर पर नहीं होते। रात को भी देर तक लौटते। कभी जल्दी आते भी तो किताबें लेकर बैठ जाते। छत की पतंगबाजी...गंगा किनारे घूमना...खंडहरों की सैर, सब धीरे-धीरे बंद होने लगा।

अविनीश भाई मुझे अकसर बेचैन से दिखते। कभी मैं उनके कमरे में पहुँचता तो मुझे लगता जैसे वह मेरी उपस्थिति से ही असहज हो गए हैं।

''तुम जाओ...मुझे कुछ सोचना है।'' अविनीश भाई कहते।

''पर क्या?'' मैं दुलार से उनसे चिपक जाता। ''मृत्यु के बारे में सोचते हो?''

अविनीश भाई मुस्कराते, ''तुम पढ़ो जाकर।''

धीरे-धीरे खाली दोपहर के लंबे होते दरख्तों के सायों में मैं अकेला घूमने लगा। शाम को जब शहर की पुरानी...बूढ़ी...बदरंग दीवारों के कोनों दरारों से अँधेरा टपकने लगता और कुहासे की ठंडक के साथ छोटे-छोटे घरों की छतों से धुआँ उठता और किसी दूसरे घर की मुँडेर पर गुच्छा बनकर बैठ जाता...मैं अकेला चुपचाप उसे घूरता रहता। किसी पुराने खंडहर की टूटी दीवार के सहारे धूप में, किसी बुर्ज की सीढ़ियों पर सूखी घास की मैं अकेला नोचता रहता। कभी कोई चमगादड़ चीखता ऊपर से निकलता तो मैं बहुत देर तक खाली आँखों से उसे देखता रहता।

अविनीश भाई से बहुत कुछ पूछना होता, बहुत कुछ बताना। पर अविनीश भाई नहीं मिलते। कभी मिलते तो मैं उन्हें पकड़ लेता।

''अविनीश भाई...गणित का एक सवाल नहीं निकल रहा।''

''हो जाएगा...कोशिश करो।'' अविनीश भाई कहते।

''अविनीश भाई आँख में आँसू कहाँ से आते हैं'' ...या ''अविनीश भाई फूल हरे रंग का क्यों नहीं होता'' ...या और कुछ। अविनीश भाई कभी-कभी झुँझला जाते। मैं

तब सहम जाता। ऐसा भी हुआ कि गली में मैं और अविनीश भाई आमने-सामने हुए और अविनीश भाई इस तरह निकल गए जैसे मुझे देखा ही नहीं। बिखरे बाल...आँखें सूजी...होंठ सूखे...बहुत तेज चलते हुए। मैं तब रुआँसा होकर बहुत देर तक उन्हें पीछे से देखता रहता।

''क्या वह सचमुच अविनीश भाई की मृत्यु है?''

उस रात वसंत का चाँद था।

खाना खाकर मैं लट्टू नचा रहा था। अचानक अविनीश भाई की आवाज सुनाई दी...बहुत दिन बाद। मैं बाहर आँगन में आया। छज्जे पर अविनीश भाई खड़े थे।

''क्या कर रहे हो?'' उन्होंने पूछा

''लट्टू नचा रहा हूँ।''

''चलो घूम आएँ।''

''नहीं...'' मैंने मुँह घुमा लिया। ''लट्टू नचाऊँगा।''

''मैं आ रहा हूँ।''

अविनीश भाई नीचे आए...मेरे सर पर एक हाथ मारा और हाथ पकड़कर बाहर घसीट लाए। लंबी गली को पार कर हम फिर सड़क पर आ गए। हम चुपचाप सड़क के एक ओर चलने लगे। मैंने कुछ नहीं पूछा कि कहाँ जाना है।

''नाराज है मुझसे?'' कुछ देर बाद अविनीश भाई खुद ही बोले।

''नहीं।'' मैंने सर हिलाया।

''मुझे पता है तू नाराज है। तुझसे मिल नहीं पाता। तू अकेला घूमता है। वह जब बड़ा होगा तब समझाऊँगा। चल...गुस्सा थूक दे...'' अविनीश भाई ने मेरे बालों में हाथ फेरा। अविनीश भाई का इतना दुलार बहुत था मेरे लिए। मेरा मन हल्का हो गया। मैंने हाथ पकड़ लिया अविनीश भाई का।

कुछ देर चलने के बाद हम शहर के पीछे वाली सुनसान सड़क पर आ गए थे। पूरी सड़क दिन भर के टूटे पीले पत्तों से भरी थी। दोनों ओर के पेड़ों की नंगी शाखों से चाँदनी गिर रही थी। सफेद...ठंडी, खाली सड़क पर परछाइयों के जाले बुनती। पता नहीं कैसी हवा थी वह...पागलों की तरह भागती तो बदन कभी सिहर जाते, कभी हल्के आनंद से देर तक काँपते रहते।

अविनीश भाई चुप थे। मैं उसी तरह उनका हाथ पकड़े चल रहा था। अचानक मुझे वह चमकदार साँप याद आया।

''तुमने सांडे वाले का साँप देखा है?'' मैंने अविनीश भाई का हाथ हिलाया।

''नहीं।''...अविनीश भाई बोले।

''अजीब है। चमकता है बहुत...रेत की तरह। आदमी को काटता नहीं...बस उसकी छाती पर बैठकर साँसों को जहरीला कर देता है। क्या जीभ है उसकी। बाहर निकालकर हवा में घुमता है। मरने वाले को पता भी नहीं चलता।''

''ऐसा ही यह जीवन है बन्टू।'' अविनीश भाई धीरे-से फुसफुसाए और मेरे गले में हाथ डालकर मुझे सटा लिया। मैंने सर उठाकर देखा। वह सामने देख रहे थे...कुछ सोचते हुए। धीरे-से बोले फिर-

''तू छोटा है अभी, पर मेरी एक बात याद कर ले। मेरे बाद कभी समझेगा। संसार का सबसे बड़ा रणक्षेत्र मनुष्य के अंदर है। अनवरत कोई न कोई भयानक युद्ध चलता रहता है वहाँ। हर युद्ध में सैकड़ों-लाखों, खून से लथपथ शव रोज गिरते हैं। सपनों के शव...भावनाओं, विचारों, आकांक्षाओं के शव। सब कुछ है वहाँ। भयानक उन्माद है...अपरिमित आनंद है...उत्सव है...मृत्यु है...जय...पराजय है। बाहर जो कुछ भी दिखता है, सब अंदर की इस सृष्टि की छाया है। सत्य अंदर की यही सृष्टि है। ...और कितनी विराट, कितनी रहस्यमयी है यह। सैकड़ों जंगल पल रहे हैं वहाँ। अंधी गुफाएँ हैं...उबलते ज्वालामुखी हैं...जाले हैं...सुरंगें है...। हम जीवन भी बस इस जगत का सूत्र ही ढूँढ़ते रहते हैं, पर उसे कभी पकड़ नहीं जाते। हर क्षण बदलता...नष्ट होता है यह। इसे समझने की कोशिश में ही हम एक-दूसरे को निरंतर कोई न कोई घाव देते या अपना कोई घाव चाटते ही रहे हैं। इन छायाओं को पकड़ने, इन छायाओं के बीच जाने को वास्तविकता समझने का भ्रम पाले। अपनी मृत्यु तक इसी तरह बल्कुल खाली हाथ पहुँचते हैं सब।'' एक साँस लेकर चुप हो गए अविनीश भाई।

मैं स्तब्ध-सा सुन रहा था। अविनीश भाई जैसे खुद से ही बोल रहे थे। बहुत देर तक सन्नाटे का एक सूखा निचुड़ा हुआ टुकड़ा हमारे साथ चलता रहा।

एक मोड़ पर पहुँचकर अविनीश भाई रुक गए। मैं भी।

''क्या हुआ?'' मैंने पूछा। ''हम कहाँ जा रहे थे?''

''पुल पर।''

''फिर रुक क्यों गए।''

''वह यहीं आएगी।''

''कौन?''

''मृत्यु।''

''वह आएगी?'' मैंने थोड़ा हैरान होकर पूछा।

''हाँ।''

''फिर हमें क्यों लाए?''

''तुम हमारा कवच बनते हो। नैतिक और सामाजिक दोनों...तुम्हारा होना एक पारिवारिक दृश्य पैदा करता है, इसलिए।''

तभी एक रिक्शा रुका और वह उतरी। मुझे देखकर मुस्करायी फिर मेरे गालों को छुआ।

''पहचानते हो हमें?'' वह बोली।

मैं झेंप गया।

उसने मुझे अपने साथ चिपका लिया। हम तीनों फिर चुपचाप सड़क के एक ओर चलने लगे। चलते-चलते मेरा मुँह अकसर उसके पेट से चिपक जाता।

जिसे मैं चुपचाप देखता था। अचानक ही वह खरगोश मेरे बिल्कुल पास था आज। मैं उसे छू रहा था...उसकी गंध पी रहा था। कोमल, स्निग्ध, चिकना और चमकदार था वह...किसी भी सुंदर चीज से सुंदर। जीवित भी था जैसे अभी बोल देगा...हिलता...काँपता। चलते हुए जब मुँह उससे छू जाता तो मैं सिहर उठता। हल्का गर्म...खुशबू छोड़ता हुआ था वह। मैं उससे चिपका सर से पाँव तक एक तरह सुख में डूबा हुआ चल रहा था।

सड़क के दोनों ओर बने बंगलों की दीवारें खत्म हो चुकी थीं। उनके अंदर से छनकर आती रोशनियाँ भी। अब कुछ नहीं था सिवाय हमारे, खाली सड़क और चाँद के। एक भारीपन हमारे साथ था। हम तीनों जैसे अपने-अपने कंधों पर अपनी कोई गोपनीय दुनिया लिए चले जा रहे थे...एक-दूसरे से बिल्कुल असंपृक्त। बीच-बीच में कभी मैं सर उठाकर अविनीश भाई को देख लेता...कभी मृत्यु को।

थोड़ी देर में पुल दिखने लगा। दूर तक फैला-खाली-खाली सा। कभी-कभी

कोई गाड़ी उस पर से निकलती तो पूरा पुल थरथरा जाता। दोनों तरफ पैदल चलने वालों की अलग जगह बनी थी। रेलिंग के पास कुछ दूर चलने के बाद हम रुक गए। रेलिंग से चिपककर...उस पर झुके हुए।

नीचे गंगा बह रही थी। ठंडी सफेदी में झिलमिलाती। तेज हवा से उसका पानी शोर कर रहा था। सामने धार में एक नाव बह रही थी...धीरे-धीरे लकड़ी से नाव को धकेलता एक बूढ़ा माँझी था। एक बहती लाश पर बैठे गिद्ध उसको नोच रहे थे। एक ओर रेती पर कुछ फसलें खड़ी थीं। कुछ नावें उलटी पड़ी थीं। कुछ कच्चे घर चमक रहे थे। चार बाँस लगाकर बनाई हुई कपड़े की छतें हवा में फड़फड़ा रही थीं। दो-तीन लकड़ी की खाट पड़ी थीं। जिन पर लोग सो रहे थे। सब कुछ साफ...एक तिलस्मी सफेदी में डूबा था। चाँद बिल्कुल हमारे ऊपर था। पूरा पुल...नदी...सृष्टि सब उसके जादुई फंदों में कसा था। शांति थी...भरी, सिहरन पैदा करती। सब कुछ दिव्य था। इस लोक से परे...इतर।

अविनीश भाई ने जेब से सिगरेट निकालकर जलाई और रेलिंग पर झुक गए। मृत्यु ने फिर मुझे चिपका लिया। मैंने सर घुमाकर देखा। वह खरगोश अब चाँदनी में चमक रहा था। सहमते हुए मैंने धीरे-से उस पर उँगली रखी। उसकी खाल काँपी। मैंने चुपचाप अपनी नाक खाल के उस टुकड़े में धँसा दी। गंध को अंदर तक निगलते हुए। चुपचाप देर तक मैं उसे निगलता रहा। किनारे पर ऊँचे मिट्टी के टीलों से कभी कोई टुकड़ा नदी में गिर पड़ता तो सब एक झटके से टूट जाता। वह सब मेरे अंदर उतर रहा था। नदी...चाँदनी...खरगोश। बहुत देर हम ऐसे ही खड़े रहे।

अचानक खाल का वह हिस्सा धीरे-धीरे काँपने लगा। मैंने सर उठाकर देखा। वह रेलिंग पर झुकी थी। उसके एक हाथ पर अविनीश भाई का हाथ रखा था और वह धीरे-धीरे हिल रही थी। मैं एक झटके से अलग हो गया। वह रो रही थी। अविनीश भाई को शायद मालूम नहीं था। मैं घूमकर अविनीश भाई के दूसरे हाथ की तरफ खड़ा हो गया। घबराकर अविनीश भाई को हिलाया मैंने। अविनीश भाई ने मुझे देखा। मैंने उसकी तरफ इशारा किया। अविनीश भाई ने सर घुमाकर देखा उसे-''पागल मत बनो।'' अविनीश भाई धीरे-से फुसफुसाए।

उसने अविनीश भाई के तरफ मुँह घुमाया। सचमुच रो रही थी वह। उसके होंठ धीरे-से फैले।

''डरो मत...ये आनंद के आँसू है...गले तक पूरा आनंद भरा है।'' वह बोली,

''कितना सुंदर है सब''...उसकी आँखें आधी बंद थीं, ''देखों,'' चाँद की ओर इशारा किया। ''मुझे पता है यह सब इसकी साजिश है।''

मैं भय और हैरानी से उसे देख रहा था। उसकी आवाज अचानक बदल गई थी-जैसे कोई दर्द से कराहते हुए बोलता है। अपनी हथेली पर रखी अविनीश भाई की हथेली उसने अपने दोनों हाथों में पकड़ ली। उसे पागलों की तरह चूमा। अपनी आँखों से छुआया...जैसे माँ पूजा की माला के दानों को छुआती थी।

अविनीश भाई चुपचाप उसे देख रहे थे। उसने अविनीश भाई की हथेली अपने गले पर रख ली।

''इस क्षण...इसी क्षण...क्या तुम मेरा गला दबा सकते हो।'' वह फुसफुसाई। उसकी आँखें लगभग बंद थी...होंठ खुले थे। बदन काँप रहा था। अविनीश भाई मुस्कराए...और मैंने देखा कि अविनीश भाई ने उसका गला दबाना शुरू किया। मैं भय से रोने और चीखने को हो रहा था। पर वह हँस रही थी। अविनीश भाई उसके गले पर अपनी उँगलियाँ कसते जा रहे थे। धीरे-धीरे उसके गले की नीली नसें मुझे दिखने लगीं। पर वह वैसी ही शांत थीं। कोई पीड़ा-कोठ छटपटाहट नहीं। उसी तरह आनंद से बंद आँखें, होंठों पर मुस्कराहट। मुझे लगा कि वह अब किसी भी क्षण मर जाएगी। अचानक अविनीश भाई ने अपना हाथ हटाया और झुककर उसके गले का वह नीला हिस्सा चूम लिया।

''तुम पागल हो।'' वह फुसफुसाए।

''और तुम कायर।'' वह खिलखिलाई और एक झटके से अविनीश भाई से लिपट गई। उसने अविनीश भाई के गले की खाल अपने दाँतों में दबा ली। अविनीश भाई हल्के से कराहे। वह उसी तरह लिपटी थी उनसे, जैसे पूरा खून चूस लेगी उनका...बोटी निकाल लेगी उनकी। उसके दाँत अविनीश भाई के गले में धँसते जा रहे थे। अचानक चीखकर अविनीश भाई ने एक झटके से उसे अलग कर दिया। वह अलग हुई तो मैंने देखा उसे। वह हाँफ रही थी। बाल खुलकर उसके चेहरे पर आ गए थे। चाँद पूरी तरह उसके चेहरे पर था और उसकी रोशनी में उसकी आँखें भयानक तरीके से चमक रही थीं, जैसे शिकार को देखकर शेरनी की आँखें चमकती हैं। होंठ खुशी से फैले थे...।

''...जंगली...।'' अविनीश भाई दर्द से बुदबुदाए।

''हाँ...तुम्हारी जंगली।'' वह पागलों की तरह खिलखिलाकर हँसने लगी। मुझे

लगा जैसे वह अभी एक पल में रूप बदल लेगी–किसी जादूगरनी की तरह अपनी असली सूरत में आ जाएगी...जैसे कहानियों में कोई दुष्टात्मा रूप बदलकर किसी का खून चूस लेती है, उसी तरह उसके चेहरे की नसें सूजी हुई थी। मेरे अंदर का सारा खून बर्फ बन गया था। डर से मेरे पाँव काँपने लगे थे। मैंने भय से इधर-उधर देखा। कोई नहीं था। पूरा पुल सन्नाटे में डूबा था। सफेद कफन ऐसी चाँदनी से ढका था सब कुछ। मैंने चुपके से देखा। मेरा खरगोश भी।

मुझे पता भी नहीं कि कब ऐसा हुआ, पर वह खरगोश अब अकसर मेरे साथ रहने लगा था। कभी मेरी पलकों पर, कभी उँगलियों की पोरों पर और कभी नसों में बहते खून के अंदर। रात होती...सपने आते और वह फुदकने लगता...कभी चाँद पर, कभी फूल के गुच्छे पर। रास्ते में चलते हुए वह कभी किसी सूखे टूटे पत्ते पर बैठ जाता...कभी किसी पत्ती की नोक पर टिकी ओस की बूँद में होता और कभी मेरी आत्मा की सलवटों पर।

मृत्यु धीरे-धीरे मेरे अंदर भी उतर रही थी।

एक दिन वह मेरे स्कूल के बाहर मिली मुझे। उसका चेहरा धूप से लाल था। हल्के पसीने में डूबा। माथे पर कुछ बाल चिपके थे। मैंने उसे देखा। वह मुझे ही ढूँढ़ रही थी। मुझे देखकर एकदम से वह मेरे पास आई।

''क्या हुआ...अविनीश कहाँ है?'' उसने पूछा।

मैं चुपचाप उसे देखता रहा।

''दो दिन से मिला नहीं...''

''पता नहीं...मैं भी नहीं मिला उनसे।'' मैंने कहा।

अचानक वह रुँआसी हो गई। उसका चेहरा फूल गया। आँखें धीरे-धीरे भींगने लगीं। ''वह आया क्यों नहीं?''...वह बुदबुदाई। ''ऐसा तो नहीं होता।''

''हमें नहीं पता।''

''अच्छा रुको।'' उसने पर्स खोलकर एक कागज कलम निकाला। ''तुम उसे यह चिट्ठी देना।'' वह कागज पर कुछ लिखने लगी। मैंने इधर-उधर देखा। नीम के नीचे हम खड़े थे। स्कूल तेजी से खाली हो रहा था। बच्चे घरों को लौट रहे थे।

''लो।'' उसने कागज मोड़कर मेरी जेब में ठूँस दिया, फिर पर्स से मीठी गोलियों का एक पैकेट निकाला। ''यह भी लो।'' वह धीरे से मुस्कराई। मैंने सर हिलाया, ''अरे

लो।'' उसने मेरी जेब में वह गोलियाँ भी ठूँस दीं और धीरे से झुककर मेरा गाल चूम लिया।

घर आकर मैंने बस्ता फेंका और सीधे ऊपर अविनीश भाई के कमरे की ओर भागा। अविनीश भाई पलंग पर लेटे थे। कंबल में दुबके। पूरे कमरे में अँधेरा था...सिर्फ ऊपर के रोशनदान से थोड़ी सी रोशनी अंदर गिर रही थी। आहट सुनकर अविनीश भाई ने आँखें खोली। हल्के अँधेरे में मैंने उनके चेहरे को देखा। लाल हो रहा था...जैसे कोई चीज अँगारे पर तप रही हो। मुश्किल से आँखें खोल पा रहे थे अविनीश भाई...

''क्या हुआ?'' पलंग पर चढ़कर मैंने उनका माथा छुआ। भयानक तरीके से गर्म था–''तुम्हें तो बहुत तेज बुखार है।''

''हाँ।'' अविनीश भाई ने मेरे कंधे का सहारा लिया और थोड़ा उठ गए...अधलेटे से।

''खिड़की खोल जरा।'' उन्होंने इशारा किया। मैंने उठकर खिड़की खोल दी। दोपहर बाद की धूप का बड़ा सा टुकड़ा अंदर कूद आया।

''स्कूल से सीधे आ रहा है क्या?''

''हाँ।'' मैंने जेब से चिट्ठी निकालकर अविनीश भाई को दी।

''क्या है?''

''उसी ने दी है।''

''स्कूल आई थी?''

''हाँ...तुम उससे दो दिन से मिले नहीं...इसलिए।''

''कैसे मिलता...हालत देख रहा है।''

मैंने फिर उनके माथे पर हाथ रखा, ''नीचे माँ को बताया?''

''हाँ।'' अविनीश भाई हँसे। ''वह देख'', उन्होंने कोने की मेज की ओर इशारा किया। वहाँ शीशी में दवा...कैपसूल रखे थे। ''सब ले रहा हूँ।''

''मैं खाकर आता हूँ।'' मैं उठ गया।

''हाँ...फिर जरा सर दबाना मेरा।''

अविनीश भाई लेटे और कंबल में दुबक गए।

दूसरे दिन वह फिर मुझे स्कूल के बाहर मिली। उसी तरह धूप में खड़ी, पसीने से

भीगी।

मुझे देखते ही तेजी से मेरी ओर आई।

''क्या हुआ...चिट्ठी दी तुमने?'' वह बोली।

''हाँ...बीमार हैं अविनीश भाई...बुखार है।'' मैंने कहा।

''बुखार।''...वह बुदबुदाई। ''सुनो...एक काम करोगे मेरा।'' ...उसने मेरा चेहरा फिर अपने हाथों में दबा लिया...बिल्कुल झुक गई मेरे ऊपर, ''मुझे ले चलोगे अविनीश के पास।'' उसकी गर्म साँस मेरे चेहरे पर टपक रही थी।

''...पर तुम्हें भी तो घर मालूम है।''

''नहीं...तुम साथ चलो...मेरे अच्छे राजा।'' उसने मेरा माथा चूमा और मुस्कराई।

''चलो।'' मैं भी मुस्कराया।

वह अचानक रुकी, ''कोई पूछेगा तो क्या कहोगे?''

''क्या कहूँ?''

''कह देना तुम्हारी टीचर हूँ।''

मैंने सर हिलाया। वह मेरे साथ स्कूल के रिक्शा पर बैठ गई। एक हाथ बढ़ाकर उसने मुझे घेरे में ले लिया। मैंने उसे देखा। वह चुप थी बिल्कुल...आँखें गीली-सी थीं...जैसे कोशिश करके आँसू रोक रही हो। बाल हवा में उड़ रहे थे...वह होंठ दबा रही थी...उसके होठों के नीचे की खाल काँप रही थी। मैंने सर घुमा लिया। भीड़-भाड़ वाली सड़क से हमारा रिक्शा गुजर रहा था।

''घर में कौन होगा?'' उसने धीरे-से पूछा।

''अविनीश भाई की माँ, बहन...छोटा भाई। उनके पिता नहीं होंगे।'' मैंने अपनी सहज बुद्धि से उसको आश्वस्त करने के भाव से यह जोड़ दिया।

वह इस बात से कुछ आश्वस्त भी हुई, फिर चुपचाप सामने देखने लगी। कुछ देर में रिक्शा गली के सामने रुका। हम उतर जाए। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया...कसकर। मुझे लगा उसकी हथेली पसीने से भीग रही है। भय या घबराहट से वह बेचैन थी...। वह इस तरह क्यों डर रही है, मैं समझ नहीं पाया।

अविनीशी भाई के कमरे में जाने के दो रास्ते थे। एक तो सीधा अविनीश भाई के घर से और दूसरा मेरे घर के आँगन के छोटे दरवाजे से। अविनीश भाई के घर से जाने

पर नीचे उनके घर के सब लोग मिलते। मेरे घर के आँगन से कोई नहीं। चुपचाप छोटे फाटक से होकर सीढ़ीयाँ चढ़कर ऊपर अविनीश भाई के कमरे में पहुँच सकते थे।

''चुपचाप चलें?'' मैंने पूछा।

''तुम ऐसा कर सकते हो?'' उसने मुझे देखा।

''हाँ...हमें कोई नहीं देखेगा।'' मैं धीरे से फुसफुसाया।

उसने राहत की एक लंबी साँस ली।

''आओ।'' मैंने उसका हाथ पकड़ा और अपने घर का दरवाजा खोलकर झाँका। मेरे आने के समय माँ दरवाजा खुला छोड़ देती थी। आँगन खाली था। माँ रसोई में मेरे लिए खाना गर्म करती होती थी। मैंने उसका हाथ खींचा और तेजी के साथ लगभग उसे घसीटता हुआ छोटे फाटक से ऊपर की सीढ़ियों पर आ गया। वह हाँफ रही थी। सीढ़ियों पर ठिठककर गहरी साँसे लेने लगी। सीढ़ियों पर अँधेरा भी था। हमेशा रहता था। हम अभ्यास से दौड़ते हुए चढ़ जाते थे।

''धीरे-धीरे आओ।'' मैं फुसफुसाया। उसने मुझे फिर चिपका लिया और मेरे सहारे से धीरे-धीरे चढ़ने लगी। पुराने तरह की अँधेरी सीलन भरी वैसी सीढ़ियों पर दबे पाँव हम चुपचाप चढ़ने लगे। कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद बाएँ हाथ पर दरवाजे में अविनीश भाई का कमरा था। कमरे के दरवाजे पर मैंने हाथ रखा। अंदर कल की ही तरह ऊपर के रोशनदान से हल्की रोशनी गिर रही थी। अविनीश भाई लेटे थे। दरवाजे पर रुककर मैं फुसफुसाया।

''अविनीश भाई।''

अविनीश भाई ने मुझे देखा और उठ गए।

''आ।'' उन्होंने हाथ का इशारा किया। मैं दरवाजे से हट गया। वह एकदम से अविनीश भाई के सामने आ गई। अविनीश भाई उछलकर बैठ गए। वह वहीं दरवाजे पर खड़ी अविनीश भाई को देखती रही। एक क्षण के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया। अँधेरे में रोशनदान से आती हल्की रोशनी काँप रही थी। तेज साँसें उछल रही थीं। उसकी...अविनीश भाई की और बेवजह मेरी भी...

वह चुपचाप अविनीश भाई को घूर रही थी। अविनीश भाई की दाढ़ी बढ़ गई थी। बाल उलझे थे। चेहरा सूख गया था। होठों पर पपड़ी जमी थी। आँखें दर्द से थोड़ी बंद सी थीं। मैं उसे देख रहा था। अब वह फिर बदल चुकी थी। उस तरह घबराती...चौंकती

और काँपती हुई नहीं थी। उसके चेहरे पर एक लाजवाब मजबूती आ गई थी। आँखें बिल्कुल जमी थीं अविनीश भाई पर। धीरे-धीरे पाँव बढ़ाती वह अविनीश भाई के पास आई...कुछ क्षण चुपचाप खड़ी रही।

''मुझे छुओ।'' वह धीरे से बोली। उसकी आवाज, जैसे कोई साँप झाड़ी में सरसराता हुआ निकल गया हो।

''छुओ।'' उसने फिर कहा। वह एकदम पास आ गई अविनीश भाई के। अविनीश भाई ने हाथ बढ़ाकर उसकी हथेली पकड़ ली। अविनीश भाई के छूते ही वह जैसे पागल हो गई। अविनीश भाई के हथेली अपने हाथों में दबाकर वह उनकी उँगलियाँ चबाने लगी...चूमने लगी...पुल की तरह अपनी आँखों से छुआने लगी। फिर एकदम से वह अविनीश भाई पर गिर पड़ी। बेजान...लाश जैसी। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

मैं चुपचाप सहमा-सा दरवाजे की आड़ में हो गया। बस्ता अभी तक मेरी पीठ पर लदा था। मैं भी कमरे में था, वह यह भूल चुकी थी। बस...बेसुध-सी अविनीश भाई की देह पर हाथ फेर रही थी। अविनीश भाई थके, पस्त, चुप लेटे थे। वह खेल रही थी उनसे। जहाँ चाहती, जैसे चाहती। उनके बालों से, देह से, उन्हें सहलाती... चूमती...काटती...रोती हुई। उसके बाल खुलकर चेहरे पर बिखर गए थे। थोड़ी देर में वह हाँफने लगी।

''बैठ जाओ।...कोई आ सकता है।'' वह बुदबुदाए।

वह एकदम से सामान्य होने लगी। पलंग पर बैठकर अपने बाल बाँधने लगी। आँसू पोंछे उसने। मैं दरवाजे के पीछे खड़ा सहमा-सा चुपचाप उसे देख रहा था। रोशनदान की धूप उसके चेहरे के एक हिस्से पर गिर रही थी। गले के नीचे वह अँधेरे में डूबी थी, जैसे एक कटा हुआ सर हवा में तैर रहा हो-धूप में चमक रहा हो।

''सुबह से कुछ खाया तुमने?'' अविनीश भाई ने पूछा उनसे।

''नहीं।'' उसने सर हिलाया।

उसके होठों पर पपड़ी जमी थी...सूखी चटकती हुई।

मुझे लगा उसने शायद पानी भी नहीं पिया है।

''कुछ खाओगी?'' अविनीश भाई ने फिर पूछा। ''बंटू ले आएगा।''

''नहीं।'' वह उठ गई। ''मैं चलूँगी''...उसने धीरे से सर झुकाकर कहा, ''तुम्हें

देख लिया...बस।''

अब वह फिर बदल चुकी थी। संयत...शांत और समझदार सी लगती हुई। अविनीश भाई पलंग से उतर गए और मेरे पास आए।

''इसे बाहर पहुँचा दो।'' धीरे-से कहा उन्होंने। मैंने सर हिलाया। अविनीश भाई ने उसके कंधे पर हाथ रखा और मुस्कराए-

''कल मैं आऊँगा।''

उसने एक बार अविनीश भाई को देखा फिर सर झुका लिया। मैंने उसका हाथ पकड़ा और सीढ़ी से चुपचाप उसी तरह छोटे दरवाजे से निकालकर बाहर छोड़ आया।

आँगन उसी तरह खाली था।

पतझर के बाद की नंगी शाखों पर नए पत्ते आ चुके थे। दिन लंबे, उबाऊ और धूल भरे होते थे। रात का आसमान साफ, असंख्य तारों से चमकता रहता था। मेरी परीक्षाएँ शुरू होने वाली थीं। मैं किताबों में डूबा रहता। अविनीश भाई भी किसी बड़ी परीक्षा की तैयारी में जुटे थे। रात-दिन पढ़ते।

इस बीच दो-तीन बार वह मुझे स्कूल के बाहर मिली। अब वह तभी मिलती जब उसे अविनीश भाई के घर जाना होता। उसका भय धीरे-धीरे दूर हो गया था। पत्र देने या कुछ कहने की अपेक्षा वह सीधे मिलने ही आ जाती। मैं उसे अविनीश भाई के घर पहुँचाने का माध्यम बन गया था। उसी तरह स्कूल के रिक्शे पर हम बैठते, फिर अपने घर आकर मैं चुपचाप दरवाजा खोलता और ऊपर कमरे तक भी छोड़ने नहीं जाता। अब सीढ़ियों पर चढ़ने में उसे मेरे सहारे की जरूरत भी नहीं होती। उन अँधेरी, घूमती, सीलन भरी, पुरानी सीढ़ियों पर वह हमारी तरह अभ्यास से चढ़ने लगी थी। अकसर वह ज्यादा देर तक रुकने लगी थी। कभी-कभी मैं ऊपर देखने जाता तो अविनीश भाई के कमरे का दरवाजा बंद मिलता। मैं चुपचाप लौट आता। अविनीश भाई ही थोड़ी देर बाद ऊपर से मुझे आवाज देते...इशारा करते। वह सीढ़ियों से नीचे आती और मैं उसे घर के बाहर निकाल देता। कभी वह पहले से मुझसे तय कर लेती या अविनीश भाई से बता देते कि आज दोपहर को सोना मत, दो बजे वह आएगी। मैं भयानक लू और धूप में आँगन में घूमता रहता। माँ अंदर चीखते-चीखते सो जाती, पर मैं कर्त्तव्यबोध और उत्तरदायित्व के महत्त्व को समझता हुआ झुलसता रहता। बिल्कुल धीरे से कोई दरवाजा खटखटाता। मैं दौड़कर दरवाजा खोलता। वह धूल से भरी...पसीने से नहाई...सुर्ख चेहरा लिए खड़ी होती। थोड़ा सा सर ढके। मैं उसे जल्दी से सीढ़ियों पर ढकेल

देता...उस लंबी खाली दोपहर में वह बहुत देर तक अविनीश भाई के साथ रहती।

मैं कितनी ही देर खाली आँगन में घूमता रहता। एक नई तरह की बेचैनी से छटपटाता। मेरी उदासी के साथ-साथ चुपचाप फुदकता बस एक छोटा खरगोश होता।

उस दिन दोपहर से ही आसमान का रंग बदल गया था।

मृत्यु चुपचाप आई थी और हमेशा की तरह आज भी अविनीश भाई के कमरे में चली गई थी। माँ मुझे बाद में एक रिश्तेदार के घर पकड़ कर ले गई, इसलिए लौटने में देर हो गई थी। अँधेरा होने से पहले ही हम लौट आए थे। अभी समय था। तोते लौटे नहीं थे, इसलिए मैं छत पर पहुँच गया था। लेकिन जैसे ही पहुँचा वैसे ही एक तरफ से आसमान भूरा होना शुरू हो गया था...और देखते ही देखते भयानक आँधी उठने लगी। क्षणभर में ही आकश की पतंगे उतर गई थीं। मैं चुपचाप बड़ी...खाली छत पर बैठा आँधी देख रहा था। अद्‌भुत था सब मेरे लिए। चारों तरफ एक विशाल रेत का बवंडर उठ रहा था। रेत की दीवार बनती...मेरी तरफ दौड़ती और पार हो जाती। कागज के टुकड़े...मिट्टी के कण...पेड़ों के पत्ते...सब आसमान तक उछल रहे थे। टीनें खड़खड़ करतीं...खिड़कियों के खुले दरवाजे चीखते...हिलते। काँपते पेड़ जैसे वहशी हो गए थे। अँधेरे में सब कुछ भयानक, रहस्यमयी और तिलिस्मी लग रहा था। मेरे अंदर एक खालीपन उतरने लगा। ठंडा...भारी और धीरे-धीरे नसों में लहू के साथ रेंगता हुआ। मैं वही मुँडेर पर लेट गया। धूल से ढका पूरा आकाश मेरी आँखों के आगे था...एक पर्दे में छुपता-निकलता। कुछ ही क्षणों में बिजली चमकने लगी...बादल गरजने लगे। मैं हैरान सा देख रहा था वह जादू...वह दुनिया। आकाश पर तड़तड़ाती एक लकीर चमकती और आर-पार हो आती...। आकाश का वह हिस्सा एक विराट चमक से भर जाता...हिस्सों में बँट जाता। बादल एक दूसरे से टकराते, चीखते। चारों तरफ भयानक सन्नाटा था...धूल थी...बिजली की चमक थी...बादल थे।

कुछ ही देर में बूँदें गिरने लगीं। आँधी की धूल उसके नीचे थम गई। सब कुछ साफ और नई महक में भर गया। तेज हवा के साथ मेरा पूरा शरीर बारिश से ढकने लगा। उस अँधेरी रात में छत पर अकेला लेटा मैं बारिश में भीग रहा था। मेरे चारों ओर सब कुछ कँपाने वाला, जादुई और सुंदर था। तेज हवाएँ...भयानक पानी और आकाश पर कौंधता पीला फूल। धीरे-धीरे मेरी देह सुन्न होने लगी। एक बर्फ की नदी उतरने लगी अंदर। बारिश की बूँदों से और अधिक उफनती...गहरी होती। धीरे से आँख बंद कर ली मैंने। एक विराटता थी चारों ओर। अनन्त...असीमित। उस महाशून्य में धीरे-धीरे मैं नष्ट हो रहा था। नष्ट हो रही थीं मेरी संज्ञाएँ...चेतना...मैं स्वयं...मेरा होना...। सब

कुछ खत्म हो रहा था।...बस एक अँधकार था...तरल...कँपता। उस अँधकार में कौंधता एक सफेद टुकड़ा...एक छोटा खरगोश...। चमकदार...हल्के सुनहरे रोओं वाला जिंदा साँस लेता...गर्म। उस पर रुकी चाँदनी...कभी बारिश की बूँदें...कभी धूप। कटता...बढ़ता। कभी पूरी देह बनता हुआ...कभी कोई माँस-पिंड...। कभी घाटी...कभी पर्वत। नंगा...निर्वसन...बिल्कुल साक्षात। मैं छू सकूँ...चबा सकूँ...इतनी दूरी पर...मेरी बेसुध...सुन्न देह पर नाचता...फुदकता...मुझे रौंदता...मुझे चूमता...काटता...एक गंध के गुच्छे में डूबा।

धीरे-धीरे मेरी साँस रुकने लगी।...एकदम से छटपटा कर उठ बैठा मैं।...कुछ गहरी साँसें ली मैंने...फिर चारों ओर देखा। बारिश उसी तरह थी। मैं जहाँ लेटा था वहाँ पानी भर चुका था। हवा रुक गई थी। अब न बिजली थी न बादलों का शोर। एक भयानक सन्नाटा था चारों ओर। अँधेरे में डूबा...गीला सहमा-सा। मेरा सर भारी हो रहा था...बदन टूट रहा था। लड़खड़ाते हुए मैं उठा। मुँडेरे से कूदा और छत से उतरकर नीचे सीढ़ी पर आ गया। अँधेरी, चौड़ी सीढ़ियों पर मैं दीवार का सहारा लेकर उतर रहा था। अविनीश भाई के कमरे के आगे से निकलता तो दरवाजा बंद था। मैं एक क्षण रुका...। मृत्यु तो दोपहर को आई थी...इतनी देर कभी नहीं रुकती थी...फिर...? एक दरार से रोशनी की लकीर बाहर गिर रही थी। काँपते हुए मैं आगे बढ़ा और चुपचाप दरवाजे की दरार से आँख चिपका दी।

मृत्यु अंदर लेटी थी...नंगी...सफेद बिल्कुल। अविनीश भाई झुके हुए मेरे खरगोश को चूम रहे थे। उसी साँप की तरह...कुँडली मारे। उनकी जीभ घूम रही थी उस पर। मेरी चीख निकल गई। मैं लड़खड़ाकर पीछे हटा। देह का खून जम गया था। पसीने में डूबा मैं देर तक हाँफता रहा फिर दौड़ते हुए नीचे उतर आया।

पूरी रात वह साँप मेरी आँखों में नाचता रहा...जीभ निकाले एक खरगोश को कुंडली में दबोचे।

अगली दोपहर फिर भयानक सन्नाटा था। मृत्यु फिर आई। मैंने दरवाजा खोला। वह पसीने में भीगी थी...धूप से लाल। मुझे देखकर मुस्कराई वह। बीच के छोटे वाले दरवाजे से हम अंदर आए। सीढ़ियों पर अँधेरा था। एक क्षण ठिठके हम फिर वह ऊपर जाने लगी। अचानक मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। उसने मुस्कराकर मुझे देखा। मैंने आँखें झुकाकर उस खरगोश को देखा। वह साँस ले रहा था...मुझे बुला रहा था। मैं जानता था कि वह मेरा है...उसकी चाँदनी...बारिश...धूप...सब मेरा था। मैंने धीरे-से उसे अपनी मुट्ठी में जकड़ लिया। एक क्षण वह काँपा...जैसे मेरी पकड़ से छूटना चाहता

हो। मैं उसे देखता रहा फिर मैंने अपने होंठ उस पर दिए। ...उसे चूमा और अपने होंठ वहीं घिसता रहा। वह एकदम चौंकी फिर धीरे-से उसने अपने हाथों से मेरा सर पकड़ा और अपने पेट में धँसा लिया...उस गंध के गुच्छे में मेरी साँस रुकने लगी। वह धँसता जा रहा था मेरे अंदर। छटपटाकर मैंने सर उठाकर देखा। उसकी आँखें चमक रही थीं...जैसे उस रात पुल पर थीं। उसी आनंद से भरी...उसके होंठ हल्के खुले थे...हल्के से कराह रही थी वह। वह बदल रही थी...जादूगरनी की तरह। मुझे लगा कि बस अब वह मेरे गले में अपने दाँत धँसाने वाली है।... ''तो यह खरगोश मेरा ही है''...मैं बुदबुदाया ''सिर्फ मेरा'' ...मैं एकदम से उससे अलग हुआ और उछलकर दरवाजे से बाहर निकल आया। पूरी ताकत से दौड़ता हुआ मैं गली के बाहर सड़क पर आ गया। रुककर मैंने खूब गहरी साँसें लीं...और फिर उसी चबूतरे पर बैठ गया।

सामने साँडे वाला उसी तरह साँप...गिरगिट बिछाए बैठा था। मैंने देखा, आज रेत का वह साँप और साँपों के बीच बिल्कुल निचुड़ा...सूखा पड़ा था।

प्रियवंद

जन्म : 22 दिसंबर, 1952

प्रकाशन : वे कहाँ कैद हैं, परछाईं नाच, छुट्टी के दिन का कोरस (उपन्यास) एक अपवित्र पेड़, खरगोश, फाल्गुन की एक उपकथा (कहानी संग्रह)

सम्मान : कथाक्रम सम्मान

तिरिया चरित्तर

–शिवमूर्ति

''विमली! ए विमली!'

'एकदम्मै मर गई का रें...'

जोर लगाते ही बुढ़िया को खाँसी आ जाती है।

''यह हरजाई तो खटिया पर गिरते ही मर जाती है।'' –बुढ़िया खटिया के पास जाकर विमली को झिझोड़ने लगी, 'मरघट लै चलो का रे?'

हड़बड़ा कर उठती है विमली और आँख मींजते हुए झोंपड़ी के बाहर चली जाती है।

लौटती है तो चूल्हे पर 'चाह' का पानी चढ़ाकर बकरी दुहने लगती है।

सात साल पहले, जब पहली बार उसने भट्ठे पर मजूरी करना शुरू किया था, नौ-दस साल की उम्र में, तो कमाई के शुरुआत के पैसों से इस बकरी की माँ को खरीद कर लाई थी वह। बाप के लिए 'चाह' का इंतजाम! और अब तो उसके बाप को चाह की ऐसी आदत पड़ गई है कि बिना 'चाह' के उसका लोटा ही नहीं उठता। इसी चाह के चलते बाप-बेटी को बुढ़िया की 'बोली' सुननी पड़ती है।

माँ-बाप को चाह का गिलास पकड़ाकर जल्दी-जल्दी नहाती है वह! रोटी सेंकती है। माँ-बाप के लिए ढक कर और अपनी रोटी बाँधकर निमरी बकरी का कान पकड़कर बाहर निकल जाती है।

आज भी निकलते-निकलते देर हो गई। रोज रात में सोते समय सोचती है कि